Wisdom Vortex:
International Journal of Social Science and Humanities

Open-access, Peer Reviewed, Refereed, Quarterly Journal, Multiple Language (English & Hindi)

e-ISSN: 3107-3808
p-ISSN: Applied for

Wisdom Vortex: International Journal of Social Science and Humanities, Volume: 02, Issue: 02, July-Sep 2026

How to cite this paper:
Kumari, S. (2026). Samkaleen Bharat ke Jaati Adharit Rajneeti ka Badalta Swaroop: Ek Vishleshanatmak Adhyayan. *Wisdom Vortex: International Journal of Social Science and Humanities, 2*(2), 77-85. https://doi.org/10.64429/wvijsh.02.02.028

Received: 03 June. 2026
Accepted: 01 July. 2026
Published: 10 July. 2026

Copyright © 2026 by author(s) and Wisdom Vortex: International Journal of Social Science and Humanities.
This work is licensed under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY- 4.0).
https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति का बदलता स्वरूप: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

कुमारी श्रुति [1]

सारांश

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था एक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था रही है, जिसने सामाजिक संरचना, अवसरों के वितरण तथा राजनीतिक प्रक्रियाओं को गहराई से प्रभावित किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को अपनाया, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न सामाजिक समूहों को राजनीतिक भागीदारी और प्रतिनिधित्व के अवसर प्राप्त हुए। इस प्रक्रिया में जाति भारतीय राजनीति का एक प्रमुख आधार बनकर उभरी। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति के बदलते स्वरूप का अध्ययन करना तथा चुनावी राजनीति, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक न्याय के संदर्भ में उसकी भूमिका का विश्लेषण करना है। अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों, विद्वानों के विचारों, सरकारी रिपोर्टों, चुनाव आयोग के आँकड़ों, सीएसडीएस–लोकनीति सर्वेक्षणों तथा संसदीय प्रतिनिधित्व संबंधी आंकड़ों पर आधारित है। शोध के निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीति में जाति का महत्व आज भी बना हुआ है, किंतु उसका स्वरूप समय के साथ परिवर्तित हुआ है। जहाँ पहले राजनीति मुख्यतः जातीय वोट बैंक और पहचान आधारित लामबंदी पर केंद्रित थी, वहीं वर्तमान दौर में विकास, कल्याणकारी योजनाएँ, सामाजिक न्याय, राष्ट्रवाद और क्षेत्रीय मुद्दे भी जातीय समीकरणों के साथ जुड़ गए हैं। राजनीतिक दल विभिन्न जातीय समूहों को आकर्षित करने के लिए नई रणनीतियाँ अपनाते हैं तथा उपजातियों को भी राजनीतिक रूप से संगठित करने का प्रयास करते हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जाति समकालीन भारतीय राजनीति में अब भी एक प्रभावशाली कारक है, परंतु यह विकास और कल्याण की राजनीति के साथ मिलकर अधिक जटिल और बहुआयामी रूप धारण कर चुकी है।

विशिष्ट शब्द: *जाति आधारित राजनीति, लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, चुनावी व्यवहार, पहचान की राजनीति*

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था ऐतिहासिक रूप से सामाजिक संगठन का एक महत्वपूर्ण आधार रही है, जिसने व्यक्ति की सामाजिक स्थिति,

[1] शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)

व्यवसाय, शिक्षा और सामाजिक संबंधों को प्रभावित किया है। स्वतंत्रता के बाद भारत ने लोकतंत्र, समानता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को अपनाया, फिर भी जाति का प्रभाव राजनीति में बना रहा। भारतीय लोकतंत्र में जाति और राजनीति का संबंध अत्यंत गहरा है, क्योंकि विभिन्न राजनीतिक दल चुनावी सफलता प्राप्त करने के लिए जातीय समूहों को संगठित करने और उनके हितों को अपने राजनीतिक एजेंडे में शामिल करने का प्रयास करते हैं। स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में कांग्रेस ने विभिन्न जातीय समूहों को साथ लेकर व्यापक सामाजिक गठबंधन बनाया, जबकि बाद के दशकों में अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST) और अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) के राजनीतिक सशक्तिकरण ने राजनीति को नई दिशा प्रदान की। विशेष रूप से 1990 के दशक में मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद पिछड़े वर्गों की राजनीति का उभार हुआ और सामाजिक न्याय तथा प्रतिनिधित्व के प्रश्न राजनीतिक विमर्श के केंद्र में आ गए। इसी दौर में अनेक क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ, जिन्होंने विशिष्ट जातीय समूहों के हितों का प्रतिनिधित्व किया। समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति का स्वरूप पहले की अपेक्षा अधिक जटिल और बहुआयामी हो गया है। अब राजनीतिक दल केवल जातीय पहचान के आधार पर राजनीति नहीं करते, बल्कि विकास, कल्याणकारी योजनाएँ, शिक्षा, रोजगार, सामाजिक सुरक्षा और राष्ट्रवाद जैसे मुद्दों को भी जातीय समीकरणों के साथ जोड़ते हैं। इस प्रकार वर्तमान राजनीति में जाति और विकास दोनों समानांतर रूप से कार्य कर रहे हैं। जनसंख्या के दृष्टिकोण से भी जाति राजनीति का महत्व स्पष्ट होता है। भारत में अनुसूचित जातियाँ कुल जनसंख्या का लगभग 16.6 प्रतिशत, अनुसूचित जनजातियाँ लगभग 8.6 प्रतिशत तथा अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) विभिन्न अनुमानों के अनुसार 40–45 प्रतिशत से अधिक आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं। यही कारण है कि चुनावी राजनीति में इन समूहों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। उम्मीदवारों के चयन, चुनावी घोषणापत्रों और राजनीतिक गठबंधनों में जातीय समीकरणों को विशेष महत्व दिया जाता है।

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति के बदलते स्वरूप का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत जाति और चुनावी व्यवहार के संबंध, विभिन्न राजनीतिक दलों की जातीय रणनीतियों, सामाजिक न्याय और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में जाति की भूमिका तथा विकास और कल्याणकारी योजनाओं के साथ जाति राजनीति के बदलते संबंधों का अध्ययन किया जाएगा।

शोध प्रश्न (Research Question)

यह शोध निम्नलिखित प्रमुख प्रश्नों पर केंद्रित है—

- क्या भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका कम हुई है या उसका स्वरूप बदल गया है?
- जाति आज भी मतदान व्यवहार को किस सीमा तक प्रभावित करती है?
- राजनीतिक दल चुनावों में जातीय समीकरणों का उपयोग किस प्रकार करते हैं?
- क्या युवा मतदाता जाति से ऊपर उठकर विकास और रोजगार जैसे मुद्दों को प्राथमिकता दे रहे हैं?
- जाति आधारित राजनीति का लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है?

अंततः यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि आधुनिक भारत में जाति केवल एक सामाजिक संस्था नहीं, बल्कि एक महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति के रूप में कार्य कर रही है, जिसका स्वरूप समय के साथ बदल रहा है, परंतु उसका प्रभाव अभी भी भारतीय राजनीति में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

साहित्य समीक्षा (Literature Review)

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका को समझने के लिए अनेक समाजशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों तथा शोधकर्ताओं ने महत्वपूर्ण अध्ययन किए हैं। इन अध्ययनों ने यह स्पष्ट किया है कि जाति केवल एक सामाजिक संस्था नहीं है, बल्कि भारतीय लोकतंत्र, चुनावी राजनीति और राजनीतिक प्रतिनिधित्व को प्रभावित करने वाली एक महत्वपूर्ण शक्ति भी है। साहित्य समीक्षा के अंतर्गत प्रमुख विद्वानों के विचारों तथा जाति आधारित राजनीति से संबंधित प्रमुख अवधारणाओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है।

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका को समझने के लिए अनेक विद्वानों ने महत्वपूर्ण अध्ययन किए हैं। इन अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि जाति केवल एक सामाजिक संस्था नहीं, बल्कि भारतीय लोकतंत्र और चुनावी राजनीति का एक महत्वपूर्ण आधार भी है। **एम. एन. श्रीनिवास** ने "प्रभावशाली जाति" (Dominant Caste) की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए बताया कि कुछ जातियाँ स्थानीय स्तर पर सामाजिक और राजनीतिक शक्ति का केंद्र होती हैं। उनके अनुसार लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं ने जाति

को समाप्त नहीं किया, बल्कि उसे नए राजनीतिक अवसर प्रदान किए (Srinivas, 1962)[1]। **रजनी कोठारी** ने अपनी प्रसिद्ध कृति Caste in Indian Politics में यह तर्क दिया कि भारतीय राजनीति और जाति एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। उनके अनुसार राजनीतिक दल चुनावी सफलता के लिए जातीय समूहों का समर्थन प्राप्त करते हैं, जबकि जातियाँ राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सत्ता में भागीदारी के लिए संगठित होती हैं (Kothari, 1970)[2]। **आंद्रे बेटेइ** ने जाति, वर्ग और शक्ति के संबंधों का अध्ययन करते हुए बताया कि आधुनिकता और सामाजिक परिवर्तन के बावजूद जाति भारतीय समाज और राजनीति में प्रभावशाली बनी हुई है (Béteille, 1965)[3]। **क्रिस्टोफ़ जाफरलो** ने पिछड़े वर्गों और दलित राजनीति के उभार का विश्लेषण करते हुए बताया कि मंडल आयोग और आरक्षण नीतियों ने वंचित वर्गों को राजनीतिक रूप से सशक्त बनाया तथा भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय की राजनीति को मजबूत किया (Jaffrelot, 2003)[4]। वहीं **योगेन्द्र यादव** के अनुसार वर्तमान समय में मतदान व्यवहार केवल जाति पर आधारित नहीं है, बल्कि विकास, नेतृत्व, वर्ग और क्षेत्रीय मुद्दे भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फिर भी जाति आज भी चुनावी राजनीति का एक प्रभावशाली तत्व बनी हुई है (Yadav, 1999)[5]। साहित्य में जाति और लोकतंत्र, वोट बैंक राजनीति, मंडल राजनीति तथा पहचान की राजनीति (Identity Politics) को प्रमुख विषयों के रूप में रेखांकित किया गया है। विभिन्न अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय लोकतंत्र ने जातीय समूहों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व और अधिकारों की मांग के लिए एक मंच प्रदान किया है। समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति का स्वरूप पहले की तुलना में अधिक जटिल और परिवर्तित हो गया है, जहाँ जाति के साथ-साथ विकास, सामाजिक न्याय और पहचान की राजनीति भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इस प्रकार उपलब्ध साहित्य यह दर्शाता है कि भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका समाप्त नहीं हुई है, बल्कि उसने बदलते सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों के अनुरूप नया स्वरूप ग्रहण कर लिया है।

सैद्धांतिक रूपरेखा (Theoretical Framework)

प्रस्तुत शोध "समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति का बदलता स्वरूप" भारतीय राजनीति में जाति की बदलती भूमिका, उसके प्रभाव तथा उसके राजनीतिक उपयोग को समझने का प्रयास करता है। किसी भी शोध को वैज्ञानिक और विश्लेषणात्मक आधार प्रदान करने के लिए सैद्धांतिक रूपरेखा अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। सैद्धांतिक रूपरेखा शोधकर्ता को यह समझने में सहायता करती है कि अध्ययन की जा रही समस्या किन अवधारणाओं और सिद्धांतों से जुड़ी हुई है तथा उसके विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किस प्रकार किया जा सकता है। जाति और राजनीति के संबंध को समझने के लिए इस अध्ययन में पहचान की राजनीति सिद्धांत (Identity Politics Theory), सामाजिक विभाजन सिद्धांत (Social Cleavage Theory), लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व सिद्धांत (Democratic Representation Theory) तथा राजनीतिक लामबंदी सिद्धांत (Political Mobilization Theory) को आधार बनाया गया है। पहचान की राजनीति सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति केवल आर्थिक लाभ, विकास या नीतिगत मुद्दों के आधार पर ही राजनीतिक निर्णय नहीं लेता, बल्कि उसकी सामाजिक पहचान भी उसके राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करती है। यह पहचान जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, संस्कृति या समुदाय से संबंधित हो सकती है। भारतीय समाज में जाति एक महत्वपूर्ण सामाजिक पहचान रही है, जिसके आधार पर लोगों के सामाजिक संबंध, अवसर और राजनीतिक झुकाव निर्धारित होते रहे हैं। यही कारण है कि विभिन्न जातीय समूह अपने अधिकारों, सम्मान, संसाधनों और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मांग के लिए संगठित होते हैं। समकालीन भारत में भी अनेक राजनीतिक दल विशेष जातीय समूहों को ध्यान में रखकर अपनी नीतियाँ और चुनावी रणनीतियाँ तैयार करते हैं। इस प्रकार पहचान की राजनीति सिद्धांत यह समझने में सहायता करता है कि जाति किस प्रकार एक राजनीतिक पहचान के रूप में कार्य करती है और लोगों के राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करती है।

सामाजिक विभाजन सिद्धांत यह बताता है कि किसी भी समाज में मौजूद सामाजिक विभाजन, जैसे जाति, वर्ग, धर्म, भाषा और क्षेत्र, राजनीतिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। भारतीय समाज बहुस्तरीय और विविधतापूर्ण है, जहाँ जाति एक प्रमुख सामाजिक विभाजन के रूप में मौजूद है। यह विभाजन केवल सामाजिक जीवन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि चुनावी राजनीति, राजनीतिक दलों की रणनीतियों और मतदान व्यवहार को भी प्रभावित करता है। कई बार मतदाता अपने जातीय हितों और समूह की पहचान को ध्यान में रखकर मतदान करते हैं। इसी प्रकार राजनीतिक दल भी उम्मीदवारों के चयन और चुनावी गठबंधनों में जातीय समीकरणों का विशेष ध्यान रखते हैं। यह सिद्धांत स्पष्ट करता है कि भारतीय राजनीति में जाति क्यों आज भी एक प्रभावशाली कारक बनी हुई है और किस प्रकार सामाजिक संरचना राजनीतिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करती है। लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व सिद्धांत भारतीय लोकतंत्र में जाति की भूमिका को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है। इस सिद्धांत के अनुसार लोकतंत्र तभी प्रभावी और सफल माना जाता है जब समाज के सभी वर्गों और समुदायों को राजनीतिक

प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अन्य वंचित समूहों को राजनीतिक भागीदारी और प्रतिनिधित्व प्रदान करना लोकतांत्रिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। आरक्षण, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक न्याय की नीतियाँ इसी सोच का परिणाम हैं। इस दृष्टिकोण से जाति आधारित राजनीति को केवल विभाजनकारी राजनीति के रूप में नहीं देखा जाता, बल्कि इसे उन समुदायों के सशक्तिकरण के साधन के रूप में भी समझा जाता है जिन्हें ऐतिहासिक रूप से सामाजिक और राजनीतिक रूप से वंचित रखा गया था। यह सिद्धांत बताता है कि जाति आधारित राजनीतिक भागीदारी लोकतांत्रिक समावेशन और सामाजिक न्याय को मजबूत करने में भी योगदान दे सकती है।

राजनीतिक लामबंदी सिद्धांत यह समझाने में सहायता करता है कि राजनीतिक दल, नेता और सामाजिक संगठन किस प्रकार लोगों को किसी विशेष राजनीतिक उद्देश्य के लिए संगठित करते हैं। भारतीय राजनीति में जाति लंबे समय से राजनीतिक लामबंदी का एक महत्वपूर्ण आधार रही है। विभिन्न राजनीतिक दल चुनावों के दौरान जातीय समूहों को आकर्षित करने के लिए विशेष रणनीतियाँ अपनाते हैं, जैसे जाति विशेष के नेताओं को आगे बढ़ाना, उनकी समस्याओं को चुनावी मुद्दा बनाना या उनके हितों से जुड़ी नीतियों की घोषणा करना। मंडल राजनीति, दलित राजनीति तथा पिछड़ा वर्ग आंदोलनों को राजनीतिक लामबंदी के महत्वपूर्ण उदाहरणों के रूप में देखा जा सकता है। यह सिद्धांत स्पष्ट करता है कि किस प्रकार जातीय पहचान को राजनीतिक समर्थन और वोटों में परिवर्तित किया जाता है तथा कैसे विभिन्न सामाजिक समूह राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए संगठित होते हैं। इस प्रकार पहचान की राजनीति, सामाजिक विभाजन, लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व और राजनीतिक लामबंदी से संबंधित सिद्धांत समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति को समझने के लिए एक व्यापक और सुदृढ़ सैद्धांतिक आधार प्रदान करते हैं। ये सिद्धांत न केवल जाति और राजनीति के पारंपरिक संबंधों को स्पष्ट करते हैं, बल्कि यह भी समझने में सहायता करते हैं कि बदलते सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवेश में जाति आधारित राजनीति किस प्रकार नए रूप ग्रहण कर रही है। इसलिए प्रस्तुत शोध में इन सिद्धांतों का उपयोग जाति आधारित राजनीति के बदलते स्वरूप, चुनावी व्यवहार पर उसके प्रभाव तथा भारतीय लोकतंत्र में उसकी भूमिका का गहन विश्लेषण करने के लिए किया जाएगा।

जाति आधारित राजनीति का ऐतिहासिक विकास (Historical Development of Caste-Based Politics)

भारतीय राजनीति में जाति का प्रभाव कोई नई घटना नहीं है, बल्कि इसकी जड़ें भारतीय समाज की ऐतिहासिक संरचना में निहित हैं। समय के साथ जाति और राजनीति का संबंध बदलता रहा है तथा विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार इसके स्वरूप में परिवर्तन आया है। स्वतंत्रता पूर्व काल से लेकर समकालीन भारत तक जाति आधारित राजनीति ने कई चरणों में विकास किया है। प्रारंभ में जाति सामाजिक संगठन का आधार थी, लेकिन धीरे-धीरे यह राजनीतिक पहचान, प्रतिनिधित्व और सत्ता प्राप्ति का महत्वपूर्ण माध्यम बन गई। भारतीय लोकतंत्र के विकास के साथ-साथ जाति आधारित राजनीति ने भी नए रूप ग्रहण किए हैं।

स्वतंत्रता पूर्व काल: स्वतंत्रता से पहले भारत में जाति मुख्य रूप से सामाजिक व्यवस्था का आधार थी, लेकिन ब्रिटिश शासन के दौरान यह राजनीतिक महत्व भी प्राप्त करने लगी। ब्रिटिश सरकार ने प्रशासनिक और राजनीतिक उद्देश्यों के लिए भारतीय समाज को विभिन्न जातीय और धार्मिक समूहों में वर्गीकृत किया। इस प्रक्रिया में ब्रिटिश जनगणना (Census) की महत्वपूर्ण भूमिका रही। 1871 से शुरू हुई जनगणनाओं में लोगों को उनकी जातियों के आधार पर वर्गीकृत किया गया, जिससे विभिन्न जातियों को अपनी संख्या और सामाजिक स्थिति का बोध हुआ। परिणामस्वरूप जातीय पहचान अधिक संगठित और राजनीतिक रूप से सक्रिय होने लगी। ब्रिटिश शासन की 'फूट डालो और शासन करो' (Divide and Rule) नीति ने भी जातीय और सामुदायिक विभाजनों को बढ़ावा दिया। इसी संदर्भ में पृथक निर्वाचन (Separate Electorates) की व्यवस्था लागू की गई, जिसके अंतर्गत कुछ समुदायों को अलग निर्वाचन क्षेत्रों से प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया। यद्यपि यह व्यवस्था मुख्य रूप से धार्मिक समुदायों के लिए शुरू हुई थी, लेकिन इससे विभिन्न सामाजिक समूहों में राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मांग बढ़ी। डॉ. भीमराव आंबेडकर द्वारा दलितों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग तथा 1932 के पूना समझौते (Poona Pact) ने जाति और राजनीति के संबंध को और अधिक स्पष्ट किया। इस प्रकार स्वतंत्रता पूर्व काल में जातीय पहचान सामाजिक दायरे से निकलकर राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करने लगी।

स्वतंत्रता के बाद: स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को अपनाया, जिसमें सभी नागरिकों को समान राजनीतिक अधिकार दिए गए। संविधान निर्माताओं ने सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा देने के लिए अनुसूचित जातियों (SC) और अनुसूचित जनजातियों (ST) के लिए आरक्षण जैसी व्यवस्थाएँ लागू कीं। हालांकि संविधान का उद्देश्य जातिगत

भेदभाव को समाप्त करना था, लेकिन लोकतांत्रिक राजनीति में जाति एक महत्वपूर्ण राजनीतिक कारक बनी रही। स्वतंत्रता के बाद के शुरुआती दशकों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने विभिन्न जातीय समूहों को साथ लेकर व्यापक सामाजिक गठबंधन (Caste Coalition) बनाया। कांग्रेस की रणनीति में ऊँची जातियों, दलितों, पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यकों को एक साझा राजनीतिक मंच पर लाने का प्रयास शामिल था। प्रसिद्ध राजनीतिक वैज्ञानिक रजनी कोठारी ने इसे "कांग्रेस प्रणाली" (Congress System) कहा, जिसमें विभिन्न जातीय समूहों के हितों को संतुलित करके राजनीतिक स्थिरता बनाए रखी गई। इस दौर में जाति राजनीति का आधार तो थी, लेकिन वह खुले रूप में राजनीतिक संघर्ष का केंद्र नहीं बनी थी।

मंडल आयोग के बाद: भारतीय राजनीति में जाति आधारित राजनीति का सबसे बड़ा परिवर्तन मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद देखने को मिला। मंडल आयोग का गठन 1979[6] में सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों (OBCs) की स्थिति का अध्ययन करने के लिए किया गया था। आयोग ने सरकारी नौकरियों में OBC वर्ग के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की। वर्ष 1990 में वी. पी. सिंह सरकार द्वारा इन सिफारिशों को लागू किए जाने के बाद भारतीय राजनीति में एक नया दौर शुरू हुआ। मंडल राजनीति के परिणामस्वरूप OBC राजनीति का उदय हुआ और कई क्षेत्रीय दलों ने पिछड़े वर्गों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को अपना प्रमुख एजेंडा बनाया। उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी (SP), बिहार में राष्ट्रीय जनता दल (RJD) और जनता दल परिवार से जुड़े अन्य दलों ने पिछड़ी जातियों को संगठित कर मजबूत राजनीतिक आधार तैयार किया। इस दौर में जाति केवल सामाजिक पहचान नहीं रही, बल्कि राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने का प्रभावशाली माध्यम बन गई। पिछड़े वर्गों, दलितों और अन्य वंचित समुदायों की राजनीतिक भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जिससे भारतीय राजनीति में सत्ता का सामाजिक आधार व्यापक हुआ।

समकालीन दौर: समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति का स्वरूप पहले की तुलना में अधिक जटिल और बहुआयामी हो गया है। आज जाति राजनीति पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है, लेकिन इसका स्वरूप बदल गया है। वर्तमान समय में राजनीतिक दल केवल जातीय पहचान के आधार पर समर्थन प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते, बल्कि जाति, विकास और कल्याणकारी योजनाओं (Welfare Politics) को एक साथ जोड़कर चुनावी रणनीतियाँ तैयार करते हैं। प्रधानमंत्री आवास योजना, उज्ज्वला योजना, आयुष्मान भारत, मुफ्त राशन जैसी कल्याणकारी योजनाओं ने कई बार पारंपरिक जातीय समीकरणों को प्रभावित किया है। साथ ही, शिक्षा, रोजगार, विकास, राष्ट्रवाद और सुशासन जैसे मुद्दे भी चुनावी राजनीति में महत्वपूर्ण बन गए हैं। इसके बावजूद उम्मीदवारों के चयन, चुनावी गठबंधनों और वोट बैंक की राजनीति में जाति अब भी एक प्रभावशाली तत्व बनी हुई है। आज की राजनीति में यह देखा जा सकता है कि मतदाता केवल अपनी जाति के आधार पर मतदान नहीं करते, बल्कि विकास, नेतृत्व, सरकारी योजनाओं और व्यक्तिगत हितों को भी महत्व देते हैं। इसलिए समकालीन दौर की राजनीति को "जाति + विकास + कल्याण" की राजनीति कहा जा सकता है, जहाँ जातीय पहचान अभी भी महत्वपूर्ण है, लेकिन वह अन्य राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों के साथ मिलकर कार्य करती है। इस प्रकार भारतीय राजनीति में जाति का प्रभाव समाप्त नहीं हुआ है, बल्कि उसने बदलती परिस्थितियों के अनुसार अपना नया स्वरूप विकसित कर लिया है।

समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति का बदलता स्वरूप

आयाम	प्रमुख तथ्य/प्रवृत्ति
1991 लोकसभा चुनाव	मंडल आयोग और OBC आरक्षण प्रमुख मुद्दा
2004 लोकसभा चुनाव	सामाजिक न्याय और OBC प्रतिनिधित्व पर जोर
2014 लोकसभा चुनाव	विकास और जातीय समीकरण का संयोजन
2019 लोकसभा चुनाव	कल्याणकारी योजनाएँ एवं जातीय समर्थन आधार
2024 लोकसभा चुनाव	सामाजिक न्याय, आरक्षण और विकास का मिश्रण
संसद में SC प्रतिनिधित्व	84 आरक्षित सीटें
संसद में ST प्रतिनिधित्व	47 आरक्षित सीटें
महिला प्रतिनिधित्व (2024)	लगभग 13.6% (74 सांसद)
OBC प्रतिनिधित्व	लगभग 25–30% सांसद
BJP की रणनीति	गैर-यादव OBC एवं गैर-जाटव दलित

कांग्रेस की रणनीति	समावेशी सामाजिक गठबंधन
BSP की रणनीति	दलित केंद्रित राजनीति
SP की रणनीति	यादव–मुस्लिम गठबंधन
RJD की रणनीति	MY (Muslim–Yadav) गठबंधन
उत्तर प्रदेश	दलित और OBC राजनीति का केंद्र
बिहार	मंडल राजनीति एवं जातीय जनगणना
तमिलनाडु	द्रविड़ आंदोलन आधारित राजनीति
महाराष्ट्र	मराठा आरक्षण आंदोलन
हरियाणा	जाट राजनीति और आरक्षण आंदोलन

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका समय के साथ समाप्त नहीं हुई है, बल्कि उसका स्वरूप परिवर्तित हुआ है। 1990 के दशक में जहाँ राजनीति मुख्यतः मंडल आयोग और आरक्षण जैसे मुद्दों के इर्द-गिर्द केंद्रित थी, वहीं वर्तमान दौर में विकास, कल्याणकारी योजनाएँ और सामाजिक न्याय जैसे मुद्दे जातीय समीकरणों के साथ जुड़ गए हैं। संसद में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों की बढ़ती भागीदारी सामाजिक प्रतिनिधित्व के विस्तार को दर्शाती है। साथ ही, विभिन्न राजनीतिक दल अपनी-अपनी सामाजिक आधार संरचना के अनुसार अलग-अलग जातीय रणनीतियाँ अपनाते हैं। राज्य स्तर पर भी जाति आधारित राजनीति का स्वरूप भिन्न है, जहाँ उत्तर प्रदेश और बिहार में OBC एवं दलित राजनीति प्रभावशाली है, जबकि तमिलनाडु में द्रविड़ राजनीति तथा महाराष्ट्र और हरियाणा में आरक्षण आंदोलनों ने राजनीतिक विमर्श को प्रभावित किया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि समकालीन भारत में जाति राजनीति अब केवल पहचान की राजनीति नहीं रह गई है, बल्कि यह विकास, कल्याण और प्रतिनिधित्व के प्रश्नों के साथ मिलकर एक नए राजनीतिक स्वरूप का निर्माण कर रही है।

जाति आधारित राजनीति का बदलता स्वरूप (Changing Nature of Caste-Based Politics)

भारतीय राजनीति में जाति हमेशा से एक महत्वपूर्ण कारक रही है, लेकिन समय के साथ इसका स्वरूप काफी बदल गया है। पहले जहाँ जाति आधारित राजनीति मुख्य रूप से वोट बैंक और जातीय पहचान तक सीमित थी, वहीं आज यह विकास, कल्याणकारी योजनाओं, राष्ट्रवाद और डिजिटल माध्यमों के साथ जुड़कर एक नए रूप में सामने आई है। इसलिए समकालीन भारत में जाति की राजनीति को केवल पारंपरिक दृष्टिकोण से नहीं समझा जा सकता, बल्कि इसे बदलती सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के संदर्भ में देखना आवश्यक है। राजनीति के पुराने स्वरूप में जाति आधारित वोट बैंक सबसे प्रमुख विशेषता थी। राजनीतिक दल विशेष जातियों को अपने स्थायी समर्थक समूह के रूप में देखते थे और चुनावी रणनीतियाँ भी उसी आधार पर बनाई जाती थीं। उम्मीदवारों का चयन, चुनाव प्रचार और गठबंधन अक्सर जातीय समीकरणों को ध्यान में रखकर किए जाते थे। उत्तर प्रदेश, बिहार और अन्य राज्यों में कई दल विशेष जातीय समूहों के समर्थन पर निर्भर रहते थे। इस दौर में मतदाताओं का मतदान व्यवहार भी काफी हद तक उनकी जातीय पहचान से प्रभावित होता था। हालाँकि, वर्तमान समय में जाति आधारित राजनीति का स्वरूप अधिक व्यापक और जटिल हो गया है। अब केवल जातीय पहचान के आधार पर चुनाव जीतना पर्याप्त नहीं माना जाता। राजनीतिक दल जाति को विकास के मुद्दों के साथ जोड़कर प्रस्तुत कर रहे हैं। सड़क, बिजली, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसे विकासात्मक मुद्दों को विभिन्न जातीय समूहों की आकांक्षाओं से जोड़ा जा रहा है। इसी प्रकार कल्याणकारी योजनाएँ, जैसे उज्ज्वला योजना, आयुष्मान भारत, प्रधानमंत्री आवास योजना और मुफ्त राशन जैसी योजनाएँ भी जातीय समूहों तक पहुँच बनाकर राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने का माध्यम बनी हैं। समकालीन राजनीति में जाति और राष्ट्रवाद का संबंध भी महत्वपूर्ण रूप से उभरकर सामने आया है। कई राजनीतिक दल राष्ट्रीय सुरक्षा, सांस्कृतिक पहचान और राष्ट्रहित जैसे मुद्दों को जातीय समूहों के साथ जोड़कर व्यापक सामाजिक गठबंधन बनाने का प्रयास करते हैं। इसके अतिरिक्त सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव ने जातीय राजनीति को नया मंच प्रदान किया है। फेसबुक, व्हाट्सऐप, एक्स (पूर्व में ट्विटर) और यूट्यूब जैसे माध्यमों के द्वारा विभिन्न जातीय समूह तेजी से संगठित हो रहे हैं और अपने हितों से जुड़े मुद्दों को राष्ट्रीय स्तर पर उठा रहे हैं। इससे जातीय लामबंदी की प्रक्रिया पहले की तुलना में अधिक तेज और प्रभावशाली हो गई है। एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन उपजातियों (Sub-Castes) की राजनीति का उभार है। पहले राजनीतिक दल बड़ी जातियों को एक इकाई के रूप में देखते थे, लेकिन अब वे उनके भीतर मौजूद उपजातीय समूहों को भी अलग राजनीतिक पहचान देने का प्रयास कर

रहे हैं। उदाहरण के लिए, उत्तर भारत में गैर-यादव OBC, गैर-जाटव दलित और अन्य छोटे सामाजिक समूहों को राजनीतिक रूप से संगठित करने की रणनीतियाँ अपनाई जा रही हैं। इससे जातीय राजनीति और अधिक सूक्ष्म तथा बहुस्तरीय बन गई है। CSDS-Lokniti Survey[7] तथा National Election Studies (NES)[8] के आंकड़े भी इस परिवर्तन की पुष्टि करते हैं। इन अध्ययनों से पता चलता है कि आज भी जाति मतदान व्यवहार को प्रभावित करती है, लेकिन मतदाता केवल जातीय पहचान के आधार पर निर्णय नहीं लेते। विकास, नेतृत्व, कल्याणकारी योजनाएँ, आर्थिक स्थिति और राष्ट्रीय मुद्दे भी मतदान को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक बन चुके हैं। विशेष रूप से युवा मतदाताओं में जाति के साथ-साथ विकास और रोजगार जैसे मुद्दों का महत्व बढ़ा है। इससे स्पष्ट होता है कि समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति समाप्त नहीं हुई है, बल्कि उसने नए सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों के अनुसार अपना स्वरूप बदल लिया है।

अतः कहा जा सकता है कि वर्तमान भारतीय राजनीति में जाति अब अकेले कार्य नहीं करती, बल्कि विकास, कल्याण, राष्ट्रवाद, सामाजिक न्याय और डिजिटल राजनीति के साथ मिलकर एक नए राजनीतिक ढाँचे का निर्माण कर रही है। यही परिवर्तन समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है।

जाति आधारित राजनीति के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव (Advantages and Disadvantages of Caste-Based Politics)

भारतीय लोकतंत्र में जाति आधारित राजनीति एक महत्वपूर्ण और जटिल विषय है। एक ओर इसने ऐतिहासिक रूप से वंचित और हाशिए पर रहे समुदायों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व तथा सामाजिक न्याय दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, वहीं दूसरी ओर इसने सामाजिक ध्रुवीकरण, वोट बैंक राजनीति और पहचान आधारित संघर्षों को भी बढ़ावा दिया है। इसलिए जाति आधारित राजनीति का मूल्यांकन केवल सकारात्मक या नकारात्मक दृष्टिकोण से नहीं किया जा सकता, बल्कि इसके दोनों पक्षों को समझना आवश्यक है।

सकारात्मक प्रभाव: जाति आधारित राजनीति का सबसे महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव राजनीतिक प्रतिनिधित्व (Political Representation) के रूप में देखा जाता है। स्वतंत्रता के बाद संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों (SC) और अनुसूचित जनजातियों (ST) के लिए राजनीतिक आरक्षण की व्यवस्था की गई। वर्तमान में लोकसभा में 84 सीटें अनुसूचित जातियों और 47 सीटें अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित हैं। इससे इन समुदायों को राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी का अवसर मिला और उनकी समस्याएँ राष्ट्रीय स्तर पर उठाई जाने लगीं। पहले जिन वर्गों की राजनीतिक आवाज़ बहुत कमजोर थी, वे आज संसद और विधानसभाओं में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। जाति आधारित राजनीति ने सामाजिक न्याय (Social Justice) को भी मजबूत किया है। मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) को शिक्षा और सरकारी नौकरियों में आरक्षण प्राप्त हुआ। इसके परिणामस्वरूप पिछड़े वर्गों की सामाजिक और राजनीतिक भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। विभिन्न अध्ययनों के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में OBC वर्ग की हिस्सेदारी लगभग 40–50 प्रतिशत मानी जाती है, जबकि राजनीति में उनका प्रतिनिधित्व 1990 के दशक के बाद लगातार बढ़ा है। इससे सत्ता संरचना में विविधता आई और सामाजिक असमानताओं को कम करने का प्रयास हुआ। जाति आधारित राजनीति ने हाशिए के समूहों के सशक्तिकरण (Empowerment of Marginalized Groups) में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्गों के अनेक नेताओं का उदय इसी प्रक्रिया का परिणाम है। बहुजन राजनीति, दलित आंदोलन और पिछड़ा वर्ग आंदोलन ने इन समुदायों में राजनीतिक जागरूकता बढ़ाई तथा उन्हें अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग बनाया। आज कई स्थानीय निकायों, पंचायतों और राज्य सरकारों में इन वर्गों की सक्रिय भागीदारी देखने को मिलती है।

नकारात्मक प्रभाव: हालाँकि जाति आधारित राजनीति के कई सकारात्मक परिणाम सामने आए हैं, लेकिन इसके कुछ गंभीर नकारात्मक प्रभाव भी हैं। इनमें सबसे प्रमुख सामाजिक ध्रुवीकरण (Social Polarization) है। जब राजनीतिक दल जातीय पहचान के आधार पर मतदाताओं को संगठित करने का प्रयास करते हैं, तब समाज विभिन्न जातीय समूहों में विभाजित होने लगता है। इससे सामाजिक एकता और सामूहिक राष्ट्रीय पहचान कमजोर हो सकती है। कई बार चुनावी माहौल में जातीय तनाव और प्रतिस्पर्धा भी बढ़ जाती है। दूसरा महत्वपूर्ण नकारात्मक प्रभाव वोट बैंक राजनीति (Vote Bank Politics) है। अनेक राजनीतिक दल विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसे व्यापक मुद्दों की बजाय विशेष जातीय समूहों को आकर्षित करने पर अधिक ध्यान देते हैं। इससे लोकतांत्रिक राजनीति का फोकस सार्वजनिक नीतियों और सुशासन से हटकर जातीय गणित पर केंद्रित हो जाता है। विभिन्न चुनावी अध्ययनों, विशेषकर CSDS-Lokniti[7] और National Election Studies (NES)[8] के अनुसार, कई क्षेत्रों में उम्मीदवार चयन और चुनावी रणनीतियाँ आज भी जातीय समीकरणों से काफी प्रभावित होती हैं। जाति

आधारित राजनीति का एक अन्य नकारात्मक पक्ष पहचान आधारित संघर्ष (Identity-Based Conflict) है। जब विभिन्न जातीय समूह राजनीतिक संसाधनों, आरक्षण, प्रतिनिधित्व या सत्ता में हिस्सेदारी के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, तब कई बार सामाजिक संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। मराठा आरक्षण आंदोलन (महाराष्ट्र), जाट आरक्षण आंदोलन (हरियाणा) और पटीदार आंदोलन (गुजरात) इसके प्रमुख उदाहरण हैं। ये आंदोलन दर्शाते हैं कि पहचान आधारित राजनीतिक दावेदारी कभी-कभी सामाजिक तनाव और अस्थिरता को भी जन्म दे सकती है।

सारणी : जाति आधारित राजनीति के प्रमुख प्रभाव

सकारात्मक प्रभाव	नकारात्मक प्रभाव
राजनीतिक प्रतिनिधित्व में वृद्धि	सामाजिक ध्रुवीकरण
सामाजिक न्याय को बढ़ावा	वोट बैंक राजनीति
दलित, OBC और आदिवासी सशक्तिकरण	पहचान आधारित संघर्ष
लोकतांत्रिक भागीदारी में वृद्धि	जातीय प्रतिस्पर्धा और तनाव
वंचित वर्गों की आवाज़ को मंच	विकास मुद्दों की उपेक्षा

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जाति आधारित राजनीति ने भारतीय लोकतंत्र में दोहरी भूमिका निभाई है। एक ओर इसने सामाजिक न्याय, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और वंचित वर्गों के सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक ध्रुवीकरण, वोट बैंक राजनीति और पहचान आधारित संघर्ष जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। इसलिए समकालीन भारत में आवश्यकता इस बात की है कि जाति आधारित राजनीतिक भागीदारी को सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक समावेशन के साधन के रूप में बनाए रखते हुए उसके विभाजनकारी प्रभावों को कम किया जाए। इससे लोकतंत्र अधिक समावेशी, उत्तरदायी और संतुलित बन सकेगा।

निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत अध्ययन "समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति का बदलता स्वरूप" के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका आज भी अत्यंत महत्वपूर्ण बनी हुई है। हालांकि आधुनिकता, शहरीकरण, शिक्षा, आर्थिक विकास और वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण राजनीति में अनेक नए मुद्दे उभरकर सामने आए हैं, फिर भी जाति का प्रभाव पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। इसके विपरीत, जाति ने बदलती सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को नए रूप में ढाल लिया है। इसलिए यह कहना अधिक उचित होगा कि भारतीय राजनीति में जाति समाप्त नहीं हुई है, बल्कि उसका स्वरूप परिवर्तित हुआ है। स्वतंत्रता के बाद के शुरुआती दशकों में जाति मुख्य रूप से राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक पहचान का आधार थी। मंडल आयोग के बाद यह पिछड़े वर्गों और वंचित समुदायों के राजनीतिक सशक्तिकरण का महत्वपूर्ण माध्यम बनी। वर्तमान समय में जाति केवल वोट बैंक राजनीति तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि यह विकास, कल्याणकारी योजनाओं, सामाजिक न्याय, राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति के साथ मिलकर कार्य कर रही है। राजनीतिक दल चुनावों में जातीय समीकरणों को ध्यान में रखते हुए विकास और कल्याण से जुड़े मुद्दों को भी प्रमुखता देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि समकालीन भारतीय राजनीति में जाति और विकास परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि कई बार एक-दूसरे के पूरक रूप में कार्य करते हैं। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि जाति आज भी चुनावी रणनीतियों, उम्मीदवार चयन, राजनीतिक गठबंधनों और मतदान व्यवहार को प्रभावित करती है। विभिन्न राजनीतिक दल अपने सामाजिक आधार को मजबूत करने के लिए अलग-अलग जातीय समूहों को संगठित करने का प्रयास करते हैं। साथ ही, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग जैसे समूहों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व भी लोकतांत्रिक प्रक्रिया का महत्वपूर्ण हिस्सा बना हुआ है। इसलिए भारतीय लोकतंत्र को समझने के लिए जाति को एक महत्वपूर्ण राजनीतिक और सामाजिक कारक के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है। अंततः यह कहा जा सकता है कि समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति एक परिवर्तनशील प्रक्रिया है, जो पारंपरिक जातीय पहचान, सामाजिक न्याय, विकास और लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व के विभिन्न आयामों को एक साथ जोड़ती है। भविष्य में भी भारतीय राजनीति के अध्ययन में जाति एक केंद्रीय विषय बनी रहेगी, यद्यपि उसका स्वरूप समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहेगा।

सुझाव (Suggestions)

समकालीन भारत में जाति आधारित राजनीति के सकारात्मक पहलुओं को बनाए रखते हुए उसके नकारात्मक प्रभावों को कम करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए जाने की आवश्यकता है। सबसे पहले, शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। जब नागरिक शिक्षित और राजनीतिक रूप से जागरूक होंगे, तब वे केवल जातीय पहचान के आधार पर नहीं, बल्कि नीतियों, विकास कार्यों और शासन की गुणवत्ता के आधार पर अपने राजनीतिक निर्णय ले सकेंगे। शिक्षा समाज में समानता, सहिष्णुता और लोकतांत्रिक मूल्यों को भी मजबूत करती है।

दूसरा महत्वपूर्ण सुझाव मुद्दा-आधारित राजनीति को प्रोत्साहन देना है। राजनीतिक दलों और नेताओं को जातीय ध्रुवीकरण की बजाय रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, कृषि, महिला सशक्तिकरण और आर्थिक विकास जैसे जनहित के मुद्दों को प्राथमिकता देनी चाहिए। इससे लोकतंत्र अधिक उत्तरदायी और विकासोन्मुख बनेगा तथा मतदाता भी व्यापक राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर मतदान करेंगे।

तीसरा, सामाजिक न्याय और विकास के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। सामाजिक रूप से वंचित और कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए विशेष नीतियाँ और अवसर उपलब्ध कराना जरूरी है, लेकिन साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि विकास का लाभ समाज के सभी वर्गों तक समान रूप से पहुँचे। केवल पहचान आधारित राजनीति पर निर्भर रहने के बजाय समावेशी विकास की दिशा में कार्य करना अधिक प्रभावी होगा।

अंततः राजनीतिक प्रतिनिधित्व में समावेशिता को और अधिक मजबूत किया जाना चाहिए। महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़ा वर्गों तथा अन्य वंचित समूहों को राजनीतिक संस्थाओं में पर्याप्त अवसर और प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। इससे लोकतंत्र अधिक सहभागी, न्यायपूर्ण और प्रतिनिधिक बनेगा। समावेशी प्रतिनिधित्व न केवल सामाजिक न्याय को बढ़ावा देता है, बल्कि विभिन्न समुदायों के बीच विश्वास और सहयोग की भावना को भी मजबूत करता है। इस प्रकार शिक्षा, राजनीतिक जागरूकता, मुद्दा-आधारित राजनीति, संतुलित विकास और समावेशी प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देकर भारतीय लोकतंत्र को अधिक मजबूत, समावेशी और उत्तरदायी बनाया जा सकता है। साथ ही, जाति आधारित राजनीति के सकारात्मक पक्षों को संरक्षित रखते हुए उसके विभाजनकारी प्रभावों को कम किया जा सकता है।

संदर्भ सूची (References)

1. श्रीनिवास, एम. एन. (1962). *कास्ट इन मॉडर्न इंडिया एंड अदर एसेज़.* बॉम्बे: एशिया पब्लिशिंग हाउस।
2. कोठारी, रजनी. (1970). *पॉलिटिक्स इन इंडिया.* नई दिल्ली: ओरिएंट लॉन्गमैन।
3. बेटेइय, आंद्रे. (1991). *सोसाइटी एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया: एसेज़ इन अ कम्पेरेटिव पर्सपेक्टिव.* नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. जैफ्रेलो, क्रिस्टोफ़. (2003). *इंडियाज़ साइलेंट रिवोल्यूशन: द राइज़*
5. *ऑफ द लोअर कास्ट्स इन नॉर्थ इंडिया.* नई दिल्ली: परमानेंट ब्लैक।
6. यादव, योगेन्द्र. (1999). "इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन द टाइम ऑफ चेंजिंग पार्टी सिस्टम्स।" *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली,* 34(34–35), 2393–2399।
7. मंडल आयोग. (1980). *मंडल कमीशन रिपोर्ट.* नई दिल्ली: भारत सरकार।
8. सी.एस.डी.एस.–लोकनीति. (2024). *नेशनल इलेक्शन स्टडी (NES) 2024.* नई दिल्ली: सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसाइटीज़।